6580

श्री
...ारसूरि
...दिर,
...ीनगर

नवम्बर १९८३
वर्ष ७ : अंक ७

तित्थयर

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA 700001

Gram: PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 M er Bobsr Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष ७ : अंक ७
नवम्बर १९८३

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

प्रकाशक
जैन भवन
पी - २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

सूची

श्रीमद् देवचन्द्र १९७
जैन गजल साहित्य :
एक परिचयात्मक आलेख २०६
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २१६
मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक
विकास २२१
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २२३

पद्मावती, मुंगेर

श्रीमद् देवचन्द्र

नागकुमार मकाती

विक्रम की अठारहवीं शती को उज्ज्वल करने वाले एक भक्त कवि हुए हैं—श्रीमद् देवचन्द्रजी। मारवाड़-मरुस्थल के सुप्रसिद्ध बीकानेर के निकटवर्त्ती एक गाँव में सं० १७४६ में उनका जन्म हुआ। ओसवाल वंशीय लूणिया गोत्र के शाह तुलसीदासजी उनके पिता थे। उनकी माता का पुण्यश्लोक नाम धनबाई था। इस धर्मप्रिय दम्पति ने जब बालक गर्भ में था तभी से उपाध्याय श्री राजसागरजी के समक्ष सविनय निवेदन किया था कि यदि उनके पुत्र होगा तो वे उसे गुरुमहाराज को वहोरा देंगे। श्रीमद् के एक भाई भी था। बालक देवचन्द्र को आठ वर्ष के होने पर माता-पिता ने प्रेम पूर्वक गुरु-चरणों में समर्पण कर दिया। शुभ लक्षण युक्त इस भावी महात्मा को राजसागर जी ने आशीर्वाद पूर्वक ग्रहण कर सं० १७५६ में दीक्षित कर राजविमल नाम रखा। गुरु श्री ने नवदीक्षित शिष्य को सरस्वती मंत्र दिया। श्री राजविमलजी अर्थात् देवचंद्रजी ने बिलाड़ा गाँव के बेनातट के भूमिगृह में मंत्र का आराधन कर शारदा माता की कृपादृष्टि प्राप्त की।

श्रीमद् अब गुरुदेव की अनन्य भक्ति पूर्वक सेवा करने लगे। गुरुश्री ने शिष्य के विनय से प्रसन्न हो कर देवचंद्रजी को सकल शास्त्र, व्याकरण, नाटक, ज्योतिष, पिंगल, स्वरोदय और अन्य सहस्रावधि ग्रन्थों का पारायण कराया। श्रीमद् का चरित्रकार कहता है कि आप श्री अल्प समय में ही—"सकल शास्त्रे लायक थया हो, जेहने थयुं मइ सुइ ज्ञान रे।"

अभ्यास काल पूर्ण होते ही अभिव्यक्तियों को मूर्त्त रूप देने का समय आ गया। महापुरुषों का यह काल अनिवार्य और सहज है। परिणाम स्वरूप सं० १७६६ के वैशाख में श्रीमद् ने ध्यान का सम्पूर्ण स्वरूप प्रकाशक "ध्यान दीपिका" नामक प्रथम ग्रंथ की पद्यबद्ध रचना की। बीस वर्ष की तरुणायु में श्रीमद् ने इस ग्रंथ में ज्ञान का जो अखूट स्रोत प्रवाहित किया है उसे देखते ही श्रीमद् की ज्ञानदशा की सहज प्रतीति होती है। सौ वर्ष के दीर्घायुषी अनुभव को भी मात कर दे वैसी जाग्रत दशा का जवानी के आंगण में पदार्पण करते श्रीमद् की अवस्था में अवबोध होता है। इसी अरसे में सं० १७६८ के पौष मास में "द्रव्य प्रकाश" नामक अपूर्व ग्रन्थ की व्रज भाषा में रचना कर समाज के

चरणों में रखा। श्रीमद् का व्रज भाषा पर अधिकार और द्रव्यानुयोग जैसे कठिन विषय को सतत् और धारा प्रवाह पद्य में रचने की कला बड़ी आश्चर्य जनक है। कहीं-कहीं तो काव्य देवी की उड़ान इतनी ऊंची गई है कि श्रीमद् की ये दोनों प्रारंभिक काव्य-कृतियाँ अध्यात्म और काव्यकला उभय दृष्टि से सफल हुई है, मानना होगा।

फिर एक दशक पश्चात् श्रीमद् ने समस्त आगमों के दोहनरूप, षद्द्रव्य, नय, निक्षेप, पक्ष, प्रमाण, सप्तभंगी आदि की चर्चा वाला "आगमसार" नामक अद्वितीय ग्रंथ, श्रावक विमल दास की दो पुत्रियाँ माइजी और अमाइजी के लिए गद्य में रचा। यह कथन श्रीमद् के चरित्रकार श्री कवियण के अनुसार है, जब कि श्रीमद् स्वयं ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति में यह ग्रन्थ मित्र दुर्गादास को समझाने के लिए मोटा कोट मरोट में सं० १७७६ के फाल्गुन शुक्ल ३ सोमवार को रचा लिखते हैं।

अब तक श्रीमद् जन्मभूमि मारवाड़ में ही भिन्न-भिन्न स्थानों में विहार करते थे। इसी बीच इनकी प्रखर विद्वता की सौरभ ठेठ गुजरात तक फैल गई। कहा जाता है कि उस समय गुजरात में विचरते हुए श्री खीमाविजय जी ने श्रीमद् को गुजरात में पधारने के लिए आमंत्रण भेजा। इस सुअवसर का लाभ लेकर सं० १७७७ में श्रीमद् गुजरात पधारे। उनके पुनीत चरणारविन्द से पावन होने का प्रथम सौभाग्य गुजरात के पाटनगर अणहिल्लपुर-पाटण को संप्राप्त हुआ। इन स्वानुभवरसिक, सर्वशास्त्र पारगत, तत्वज्ञानी महात्मा के पीछे सारा पाटण पागल बन गया। श्रीमद् का स्याद्वाद शैली युक्त, न्यायालंकृत व्याख्यान सुनने के लिए हजारों श्रोता उपस्थित होते। पाटण निवास के समय श्रीमद् को एक महापुरुष ज्ञानविमल सूरि के साथ आत्मीय प्रेम हो गया। बात यह हुई कि वहाँ के नगर सेठ दोशी तेजसी जेतसी ने सहस्त्रकूट जिन बिंब निर्माण कराया था। श्रीमद् के द्वारा उनके नाम पूछने पर सेठ ने अज्ञात बतलाया। उस समय विद्वान कहलाने वाले श्रीज्ञानविमलसूरिजी को पूछने पर सेठ को जवाब मिला कि प्रायः शास्त्र में ये नाम नहीं हैं। श्रीमद् के ये नाम बतला देने पर सूरिजी के साथ प्रीति हो गई और श्रीमद् की अत्यन्त प्रसिद्धि हो गई। ज्ञानविमल सूरि ने ऐसे विद्वान नर-रत्न को देख कर अत्यन्त मान दिया।

इस समय के बीच जैन साधुओं में महान् स्तंभ रूप और प्रखर विद्वान गिने जाने वाले श्री जिनविजयजी, श्री उत्तम विजयजी और श्री विवेक विजयजी ने श्रीमद् के पास अत्यन्त प्रेम पूर्वक अभ्यास किया था। श्रीजिनविजय जी ने श्रीमद् के

पास रह कर महाभाष्य का पारायण किया था जिसका उल्लेख श्री उत्तम विजय जी कृत "श्रीजिनविजय निर्वाण रास" में इस प्रकार है :

गुरुनी महिर नजर बहु, विद्या विनय विशाल ।
पंडित जतनी सेवना, पाये ज्ञान रसाल ॥
खिमाविजय गुरु कहणथी, पाटण मां गुरु पास ।
स्वपर समय अवलोकतां, कीधां बहु चोमास ॥
श्रीठाकुरसी कने पढ्या, शब्द शास्त्र सुखवास ।
कांतिविजय गणि संग थी, प्राकृत शब्द अभ्यास ॥
ज्ञानविमलसूरि कने, वांची भगवती खास ।
महाभाष्य अमृत लह्यो, देवचंद गणी पास ॥
काव्य छन्द नाटिक प्रमुख, अभ्यासीया बहु ग्रंथ ।
अनुक्रमे गीतारथ थया, विचरंता शुभ पंथ ॥

श्रीमद् के पास श्री उत्तमविजयजी के किये हुए अभ्यास विषयक श्रीपद्म-विजयजी कृत "श्रीउत्तमविजय निर्वाणरास" में निम्नोक्त कथन है :

खरतर गच्छ मांही थया रे लोल, नामे श्रीदेवचंद रे सोभागी ।
जैन सिद्धान्त शिरोमणी रे लोल, धैर्यादिक गुण वृन्द रे सोभागी ॥

* * *

ते गुरु नी वाणी सुणी, हरख्यो चित्त कुमार ।
ज्ञान अभ्यास वंछं हवे, तुम पासे निरधार ॥
इंगित आकारे करी, जाणी तेह सुपात्र ।
ज्ञान अभ्यास कराववा, कीधो तेहनो छात्र ॥

श्री विवेकविजयजी ने भी श्रीमद् के पास अभ्यास किया था । देवविलास-कार कवियण कहते हैं कि :

तप गच्छ मांहे विनीत विचक्षण, श्रीविवेकविजय मुनींद ।
भणवा उद्यम करता विनयी घणुं, उद्यमे भणावे देवचंद्र ॥
गुरु सदृश मन जांणे विवेकजी, खिजमति में नित्त सिद्ध ।
विनयादिक गुण श्रीगुरु देखी ने, विवेकजी उपर मन्न ॥

श्रीमद् खरतर गच्छ के होने पर भी तप गच्छ के ये तीन महात्मा जरा भी न्यूनता लाये बिना उनके चरणों में बैठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करते थे । श्रीमद् भी गच्छ का मतान्तर न रखकर वात्सल्यभाव से ज्ञानदान करते ।

इससे सहज ज्ञात होता है कि महापुरुषों को स्थूल वाड़ाबंदी जरा भी बाधक नहीं थी।

अब श्रीमद् के द्वारा अनेक शासन प्रभावक कार्य होते हैं। सं० १७८७ में अहमदाबाद नागोरी सराय में भगवती सूत्र की वाचना, ढुंढक माणेकलाल का मूर्तिपूजक बनाना, शान्तिनाथ की पोल में सहसफणा बिंब की स्थापना, सहस्र-कूट जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा, सं० १७७६ के खंभात चोमासे के बाद शत्रुंजय पर जीर्णोद्धार आदि अनेक सुकृत्य करने के पश्चात् श्रीमद् सूरत पधारे। कितनेक समय विविध स्थल में विहार करने सं० १७८५, १७८६ और १७८७ में शत्रुंजय पर प्रतिष्ठा कर श्रीमद् अहमदाबाद आकर वहाँ चातुर्मास रहे। उस समय सं० १७८८ के आषाढ़ सुदि २ के दिन श्रीमद् के गुरु दीपचंदजी पाठक का देहावसान हुआ।

अहमदाबाद के सूबेदार-शासक रत्नसिंह भंडारी इस समय श्रीमद् के ज्ञान से मुग्ध होकर उनके परम भक्त बने। वहाँ फैला हुआ मृगी (महामारी) उपद्रव गुरुश्री ने भण्डारी तथा महाजन की विनती से शान्त किया और गुरुश्री के आशीर्वाद से भण्डारी ने रणकुजी के साथ युद्ध में विजय प्राप्त की। श्रीमद् की प्रखर शक्ति देखकर विनीत बना भण्डारी गुरुश्री की भक्ति और सेवा-उपासना में अपने को कृतकृत्य मानने लगा।

गुरुश्री ने इस समय एक विष्णुयोगी को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। सं० १७६५ में पालीताना रहकर उसके बाद दो वर्ष उन्होंने नवानगर में बिताये, वहाँ ढुंढको को जीता। चैत्य में बंद पड़ी पूजा को चालू कराया और पडधरी के ठाकुर को प्रतिबोध दिया। स० १८०२-३ में राणावाव तथा सं० १८०४ में भावनगर रहकर वहाँ के राजाओं को जैन धर्म के प्रति प्रेमी बनाया। सं० १८०५-६ में लींबड़ी रहकर वहाँ तथा धांगध्रा और चूडा—इन तीन स्थानों में बिंब प्रतिष्ठा कराई

सं० १८८८ में गुजरात से शत्रुंजय संघ में गये। बाद में दो वर्ष गुजरात में बिताये। बाद सं० १८१० में सूरत के सेठ कचरा कीका के निकाले हुए संघ सहित पालीताणा पधारे। गुरुश्री के उपदेश से सेठ ने साठ हजार रुपये खर्च किए। सं० १८११ में लींबड़ी में फिर प्रतिष्ठा कराने के बाद श्रीमद् अहमदा-बाद पधारे जहाँ गच्छपति ने उन्हें पूर्ण मान सहित वाचक पद दिया।

श्रीमद् ने अहमदाबाद में रह कर देशनासार, नयचक्र, ज्ञानसार अष्टक पर संस्कृत टीका, कर्मग्रन्थ पर टीका वगैरह उत्तमोत्तम ग्रन्थों की रचना की।

सं० १८१२ (गुजराती १८११) के भाद्रपद अमावश्या के दिन श्रीमद् समाधि-पूर्वक कालधर्म प्राप्त हुए। अन्तिम अवस्था में उनकी आत्म-जागृति अपूर्व थी। निजानंद मस्ती में सराबोर, हंसते वदन, मोक्षसुंदरी को वरण करने को अधीर बने हों वैसे मात्र ६५ वर्ष इस मानवी दुनिया में बिता कर श्रीमद् चले गए।

अहमदाबाद के डोषीवाड़ा के उपाश्रय में श्रीमद् का देहावसान हुआ। उनकी चरणपादुका अहमदाबाद के हरिपुरा पाड़े में देहरासर के सामने के मकान में है। चरणपादुकाओं पर लेख इस प्रकार है :

"श्रीमद् जिनचंद्रसूरि शाखायां श्री खरतरगच्छे संवत् १८१२ वर्षे महा वदि ६ दिने उपाध्याय श्री दीपचंद्रजी शिष्य उपाध्याय श्री देवचंद्रजीनां पादुके प्रतिष्ठिते।"

श्रीमद् के मनरूपजी और विजयचंदजी—दो विद्वान शिष्य थे। जिनमें मनरूपजी के वक्तु जी और रायचंदजी तथा विजयचंदजी के रूपचंदजी और सभाचंदजी नामक शिष्य थे।

श्रीमद् सुन्दर व्याख्यान देते, श्रोतागण उनके तत्वज्ञान पूर्ण वक्तृत्व सुनकर अत्यन्त हर्षित होते। श्रीमद् का वाचन इतना अधिक विशाल था कि किसी भी विषय को स्पर्श कर चाहे जितने कठिन विषय को सामान्य श्रोताजन पचा सकें ऐसा सरस बनाकर प्रस्तुत करते। उनके लेखन में जो अनेक अवतरण उद्धृत हैं उनसे उनके वाचन बाहुल्य की प्रतीति होती है। न केवल स्वदर्शन ही किन्तु अन्य दर्शन के अनेक ग्रन्थों का उन्होंने परिशीलन किया था।

श्रीमद् का प्रसिद्ध व अप्रसिद्ध ग्रन्थ समुदाय अति विशाल है। उन्होंने गद्य में एवं पद्य में संस्कृत, व्रज, प्राकृत और गुजराती भाषा में लेखन किया है। पद्य में श्रीमद् ने लम्बे काव्य और लघु संगीत काव्य प्रचुर परिमाण में रचे हैं। श्रीमद् की काव्य कला कभी तो पंख फड़फड़ाती गगनमंडल में उड़ान भरती है तो कभी सुरूपा सुन्दरी की भाँति रसिक जनों के हृदय को रंजित करती मानव भूमि में विचरती है। श्रीमद् का कविता प्रवाह सतत् खलखल बहते झरने की भाँति मधुर रव करता चला जाता है। रस जमाने में श्रीमद् एक ही थे। कितनी ढालें और स्तवन गाते अपने को लगता है कि पुनः पुनः गाते ही रहें। बहुत बार तत्वज्ञान से भरपूर काव्यों को समझने में समय लगता है, फिर भी सन्दिग्धता हटाकर स्पष्टार्थ लाने में उन्होंने पूर्ण प्रयत्न किया है। श्रीमद् की उपमाएँ अत्यन्त मनोहर और मुग्धकारक हैं। श्री नेमिनाथ भगवान का सारा स्तवन श्रीमद् की इस शक्ति का साक्ष्य है। उनके कथन में जहाँ-

यहाँ प्रसाद गुण और माधुर्य तैर रहा है। चौबीसी का प्रथम स्तवन "ऋषभ जिणंदशी से प्रीतड़ी" तर्क, पाण्डित्य और कवित्व शक्ति का बेजोड़ नमूना है। इससे भी भव्य करुण रस बरसाता वीर विरह वर्णनात्मक श्री वीर प्रभु का स्तवन श्रीमद् के सभी काव्यों में प्रथम श्रेणी में आने योग्य है। इसकी स्पर्द्धा कर सकने वाले अन्य काव्य समस्त गूर्जर साहित्य में इने-गिने ही हैं। यह एक ही काव्य श्रीमद् को अमरता देने वाला है।

नाथ विहूणुं सैन्य ज्यूं रे, वीर विहूणो रे संघ।
साधे कुण आधारथी रे, परमानंद अभंगो रे ॥ वीर प्रभु सिद्ध थया ॥
मात विहूणो बाल ज्यूं रे, अरहो परहो अथड़ाय।
वीर विहूणा जीवड़ा रे, आकुल व्याकुल थाय रे ॥ वीर प्रभु सिद्ध थया ॥

सुन्दर स्वर लय में गाते सुनकर किसकी आँखों में से आँसू नहीं टपकते? शब्द-शब्द में कारुण्य छाया हुआ है। जीवन के सामान्य प्रसंगों में से ली हुई उपमाएँ भी कितनी रम्य हैं? उनकी अध्यात्म होरी (फाग) भी साधक के झनझनाहट से भरी हुई है:

आत्मप्रदेश रंग थल अनोपम, सम्यग् दर्शन रंग रे !
निज सुख के सधैया तुं तो निजगुण खेल वसंत रे, निज सुख के सधैया।

श्रीमद् की काव्य शक्ति का सम्पूर्ण दिग्दर्शन कराने जाने से विषयान्तर होने का भय है, क्योंकि इस पुस्तक में केवल उनकी गूर्जर गद्य कृतियों का ही समावेश है अतः यहाँ उनके गद्यग्रन्थों का परिचय देना ही युक्त है। श्रीमद् देवचन्द्र प्रथम भाग में निम्नोक्त ग्रन्थ समाविष्ट हैं:

१ आगमसार, २ नयचक्रसार, ३ गुरुगुण छत्तीसी, ४ कर्मग्रन्थ १ से ५, ५ कर्म संवेध प्रकरण, ६ विचार रत्नसार, ७ छुटक प्रश्नोत्तर, ८ तीन पत्र।

१ आगमसार—सकल जैन सिद्धान्तों के दोहन रूप यह ग्रन्थ अध्यात्म ज्ञानरूप गहन ग्रन्थ की प्रस्तावना रूप है। जैन दर्शन के मुख्य तत्वों को छांट कर श्रीमद् ने सरल और स्पष्ट भाषा में स्व-आगम का रहस्यस्फोट किया है। षड्द्रव्य, आठ पक्ष, सात नय, चार निक्षेप, चार प्रमाण, सप्त भंगी आदि गूढ़ विषयों की चर्चा वाला यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय और विख्यात है। इसकी महत्ता बतलाने के लिए इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि स्वर्गीय योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजी ने दीक्षा लेने से पूर्व इस ग्रन्थ का सौ बार अध्ययन किया था।

२ नयचक्रसार—किसी भी वचन को अच्छी तरह समझने और श्रद्धा करने के लिए पूर्वापर अपेक्षा सहित जानना चाहिये। षड्दर्शन के विरोधाभास वाले मन्तव्यों को नय में पारंगत मनुष्य, विचार वैविध्य के किसी भी उलझन में पड़े बिना सत्य दृष्टि से देख सकता है। इससे नय का ज्ञान अत्यावश्यक और उच्च भूमिका निश्चित करने का मापदण्ड है। श्रीमद् ने इस ग्रन्थ में नय का स्वरूप समझाने का प्रयत्न किया है। नय के अनेक भेदों का भेदन करने में उन्होंने बुद्धि की जड़ता को वेगवती बनाकर नय का यथार्थ ज्ञान कराया है। श्री मल्लवादी कृत द्वादश सार नयचक्र से श्रीमद् ने इस ग्रन्थ की रचना की है। श्रीमल्लवादी ने उपर्युक्त ग्रंथ में ७०० नयों की वाचना की है जिसे साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकता अतः इसमें नय के मुख्य स्थूल भेदों का संक्षिप्त विचार किया है। तदुपरान्त गुणस्थान आश्रित जीवभेद द्रव्य गुण पर्याय लक्षण नयनिक्षेप सह, सप्तभंगी, पंचास्तिकाय स्वरूप, सामान्य विशेष स्वभावके लक्षणादि का भी इसमें वर्णन है।

३ गुरु गुण छत्तीसी—आचार्य के छत्तीस गुण होते हैं। छत्तीस छत्तीसियाँ (१२९६) भिन्न-भिन्न स्वरूप इस ग्रंथ में है। आचार्य पद धारण करने से पूर्व कितनी योग्यता आवश्यक है इसका सहज ख्याल करने के इच्छुक इसे अवश्य पढ़ें।

४ कर्म ग्रंथ—कर्म सिद्धान्त के आवश्यक ज्ञान हेतु देवेन्द्रसूरि जी के १ से ५ कर्मग्रन्थ प्राकृत भाषा में हैं। श्रीमद् ने जन साधारण के उपकार हेतु भाषा में टबा लिखा है।

५ कर्म संवेध प्रकरण—कर्मग्रंथ की पूर्ति स्वरूप यह ग्रंथ श्रीमद् ने रचा है जो कर्मग्रंथ के साथ ही रखा गया है।

६ विचार रत्नसार—इस ग्रंथ में ३२२ शास्त्रीय गहन प्रश्नों का समाधान प्रश्नोत्तर शैली में बिना किसी खंडन-मंडन में उतरे गुंफित किया है जो अध्यात्मी महापुरुष की उच्च मनोभूमि का परिचायक है।

७ छूटक प्रश्नोत्तर—इसमें राधनपुर, थिराद, नवानगरादि के श्रावक संघ के प्रश्नों का शास्त्र संगत उत्तर है।

८ तीन पत्र—सूरत की श्राविका जानकी बाई हरख बाई के प्रति श्रीमद् के लिखे हुए तीन पत्रों में तत्कालीन श्राविका समाज का कितना उच्च अभ्यास और द्रव्य नुयोग के गहन विषय पर अनुशीलन था इसका अच्छा बोध होता है।

मस्तयोगी ज्ञानसारजी ने आनदघन जी की चौबीसी और देवचंदजी की

साधु सद्भाव पर टबा लिखा है। वे लिखते हैं कि श्रीमद् देवचंद्रजी को एक पूर्व का ज्ञान था—ऐसी गुजरात में कहावत है। ज्ञानसारजी कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे, उनका कथन तत्कालीन समस्त जैन समाज का मन्तव्य था। श्रीमद् पर सर्वगच्छ के महापुरुष पूज्य भाव धारण करते थे। उनके विषय में "श्री उत्तमविजय निर्वाण रास" में इस प्रकार लिखा है :

खरतर गच्छ मांहि थया रे लोल, नामे श्री देवचंद रे सोभागी।
जैन सिद्धान्त शिरोमणि रे लोल, धैर्यादिक गुण वृंद रे सोभागी॥
देशना जास स्वरूप नी रे लोल, ते गुरु ना पद पद्म रे सोभागी।
वंदे अमदावाद मां रे लोल, पूंजाशा निछद्मरे सोभागी॥

ये पूंजाशा ही उत्तमविजय जी थे। श्रीमद् के प्ररूपित विशाल साहित्य देखते वे एक पूर्व के ज्ञाता होंगे इस विषय में हमें जरा भी शंका नहीं रहती। अपने इस विशाल ज्ञान का व्यक्त शब्दब्रह्म रूप में श्रीमद् ने जनता को पान कराया है।

श्रीमद् का गद्य सरल, घरेलू और भाववाही भाषा में विचार श्रेणी को एक समान उपस्थित करता है। श्रीमद् का हृदय जितना सच्चा व पवित्र है, उनकी शैली भी वैसी ही पवित्र है। स्पष्टता और निराडंबरत्व उनके गद्य के मुख्य गुण हैं। अनिच्छनीय, आवश्यकता से अधिक संस्कृत शब्दों को उन्होंने तिलाञ्जली दे रखी है। सुंदर, मधुर और सीधी-सादी भाषा में श्रीमद् ने अपने विचार स्पष्ट और आवश्यकता परिमित शब्दों में कहा है। स्वयं पंडित होते हुए भी उनकी शैली में न तो पाण्डित्य का प्रदर्शन है न विचारों के दुष्काल दिखाते मूढ़मतियों के गलत शब्द प्रयोग। उन्हें जो कुछ कहना है उसे ही वे कहते हैं। केवल वाणी का व्यभिचार उन्होंने कहीं भी नहीं किया। जब गुजराती भाषा व्यवस्थित रूप से गद्य साहित्य में आने का ऊषाकाल में आ रही थी उससे डेढ़ सो वर्ष पूर्व इन महात्मा ने गद्य लिख कर गूर्जर गिरा पर अनहद उपकार किया है। स्वयं संस्कृत ग्रंथ रचना करना जानते हुए भी लोक भाषा में लिखकर मातृ भाषा पर अपना प्रेम व्यक्त किया है। श्रीमद् मारवाड़ में जन्मे हुए होने पर भी गुजराती भाषा पर उनका गजब का अधिकार था। गुजराती का सिद्धहस्त लेखन देख कर "देव विलास" की उपलब्धि से पूर्व स्वर्गीय श्री बुद्धि सागर जी जैसों ने श्रीमद् की जन्मभूमि गुजरात होने की कल्पना की थी। श्रीमद् की साहित्यिक प्रतिभा का वैशिष्ट्य उनकी कृतियों में झलक रहा है। उनकी कीर्ति सर्वभक्षी काल का उपहास करती हुई दो सौ वर्षों से मस्तक ऊंचा किये खड़ी है और भविष्य में रहेगी यह निर्विवाद है।

इस महाप्रभावक महात्मा के विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है। प्रखर अध्यात्मरसिकता, निजानंद मस्ती, अलख दशा, उत्कट प्रभु प्रेम, असाधारण लघुता, अद्भुत वैराग्य, समभाव, समता, ऐक्य भाव, पूर्णानंद प्राप्ति आदि विषय तो अभी अस्पृष्ट हैं। श्रीमद् को उचित न्याय देने जाने से एक पुस्तक भर जाय किन्तु पुस्तक भरने की आवश्यकता नहीं, प्रस्तावना रूप में उनकी अनमोल देन की ओर अंगुली निर्देश कर पाठकों को ही उनके श्रुत ज्ञान समुद्र में डुबकी लगाने दूं, यह मेरा कर्त्तव्य है। सुज्ञ अध्यात्म रसिक बन्धु वैसा करने की प्रेरणा प्राप्त करें। अन्त में मैं चाहता हूँ कि श्रीमद् जैसे गच्छ भेदों की बालिशता दूर कर जगत् में आत्म प्रेम-गंगा प्रवाहित कर विश्व बन्धुत्व की भावना प्रेरित आत्म सौन्दर्य की झांकी कराने में कोई महात्मा भारतवर्ष और जैन जगत् को संप्राप्त हो।

[श्रीमद् देवचंद्र भाग १ की प्रस्तावना से श्री भँवरलाल नाहटा कर्तृक अनुदित।]

जैन गजल साहित्य : एक परिचयात्मक अध्ययन

डा० भगवती लाल शर्मा

[पूर्वानुवृत्ति]

११ जोधपुर वर्णन गज़ल :

त्रुटित प्रति होने के कारण इसके रचयिता अज्ञात है और इसका रचना काल भी।[९] वैसे महाराज मानसिंह के समय में इसकी रचना हुई थी :

राज करे राठौड़ वर, श्री मानसिंह महाराज।
अटल आण वरतै अखंड, इसकी अवर न आज ॥ ४ ॥

महाराज मानसिंह का समय सं० १८३९ से सम्वत् १९०० है।[१०] कवि ने मंगलाचरण प्रस्तुत कर वर्णन किया है :

सारद गणपति शिर नवुं, निश्चै इक चित्त होय।
गढ जोधाणो वर्णवुं, मोटी बुद्धि बो मोय ॥ २ ॥

सब ही गढ़ा शिरोमणि, अति ही ऊँचो जाण।
अनड़ पहाड़ां ऊपरे, जालम गढ़ जोधाण ॥ २ ॥

१२ झींगोर गज़ल :

इसके कवि जटमल हैं। आप नाहर गोत्रीय जैन श्रावक थे। इस गज़ल में कवि का वर्ण्य झींगोर नगर की एक नारी रही है।

झींगोर कोटा खूब देखी नारी एक सुनार की।
मन लाई साहिब आप सिरजी पत सिरजणहार की।
मुख चंद मुंह निसाण चाढे नैन चासी सार की।
अलि मस्ति आही नाछि नखरा कली जान अनार की।

१३ डीसा गज़ल :

यह खरतरगच्छीय जैन यति देव हर्ष की[११] १२१ पद्यों की रचना है जिसमें डीसा का बड़ा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत हुआ है :

---

९ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, द्वितीय भाग, संपादक श्री अगरचन्द नाहटा, पृ० १०५।

१० परम्परा, भाग १५-१६, पृ० ३४१-३४६।

११ पुण्य सुजस क्रोधी प्रगट जिहा सिद्ध अंबा माता घणी।
कवि देवहर्ष मुख थी कहै, दीये सुजस लीला घणी ॥ १२१ ॥

वीन उपदेश कथीर ज्युं, पहिर खुशी नहीं होय।
हीरा मणि माणक सही, लीला कवि जन लोय ॥ २ ॥
घर नीली धाण धार में, गुणीयल नर शुभ गाम।
नग फण रस कस नीपजे, धवल नवल सुख धाम ॥ ३ ॥

१४ नागौर वर्णन गज़ल :

यह गज़ल कवि मनरूप ने महाराज मानसिंह के समय में सं० १८६२ में रची जिसका कवि ने इस तरह उल्लेख किया :

महीपति मानसिंह महाराज, सब ही भूप का सिरताज।
उग बल प्रबल अरियण खैस, डंडही भरे दस ही देस ॥ २ ॥

गज़ल के अन्त का कवित्त इस प्रकार है :

गज़ल सुणे जे गुणीं, भली तिनके मन भावैं।
सुणे राव राजान, उमंग तिनके चित आवैं।
पंडित गुणे प्रवीण, हरख उपजे हिय उलह से।
अवर सुणें नर नार, बड़े चित्त मायाबिल से।
नग रतन सहर नागौर है, कहों कीरत केती करां।
कूड नहीं जाण तिलमात कंथ, निरख दाद देज्यों नरा ॥ ८३ ॥

१५ पाटण गज़ल :

इसके कर्त्ता खरतरगच्छीय देवहर्ष हैं।[१२] इस कृति की पद्य संख्या १४५ है। इसे कवि ने सं० १८५९ के फागुन मास में बनाया।[१३] रचना की बानगी इस प्रकार है :

घर नीलीं मंदिर धवल, अक्षय लाछि अलक्ष्य।
सर्व लोक सुखिया वसे, खूबी कहै खलक्ष्य ॥ ४ ॥
रथ पायक हय गय घणा, दिन-दिन चढ़ते दाव।
गायक वाल गाजे गुहिर, राज करै हिन्दू राव ॥ ५ ॥

१६ पाली नगर वर्णन :

कवित्त, ढालादि में यह किसी अज्ञात जैन कवि की रचना है। इसमें कृति का रचना काल भी नहीं दिया गया है। नगर वर्णन का आदि अन्त इस प्रकार है :

---

[१२] पाटण जस कीधो प्रगट, जिहा पंचासर त्रिभुवन धणी।
कवि देवहर्ष मुख थी रटै, कुशल रंग लीला घणी ॥ १ ॥

[१३] संवत अठार उणसठ वरस, फागण वाधी सु दिखी सरस ॥ १४४ ॥

आदि :

पाली नगर सुहामणों, देख्यां आवै दाय।
वर्णन ताकी अब वदूं, सामण करत सहाय ॥ १ ॥

अन्त :

आण वहै जिननी सदा रे, प्रमुदित मन ससनेह।
नाम जपे श्री पूज्य नो रे, ज्यूं बावैया मेह ॥

१७ पूरब देश वर्णन :

इसके रचयिता ज्ञानसार हैं। आप खरतरगच्छीय रत्नराज गणि के शिष्य एवं मस्त योगी एवं राज्यमान्य विद्वान थे। इस वर्णन में १३३ पद्य हैं और कवि की अन्य रचनाओं को दृष्टि में रखकर इसका रचना काल सं० १८५६ और सं० १८८१ के बीच माना जा सकता है। रचना का आदि अन्त अधोलिखित है :

आदि :

केई मैं देख्या देश विशेषा
नतिरे अब का सब ही में।
जिह रूप न रेखा नारी पुरुषा,
फिर - फिर देख्या नगरी में ॥
जिहाँ काणी चुचरी अधरी बधरी,
लगुरी पंगुरी ह्वै काई।
पूरब मति जाज्यो, पच्छिम जाज्यो,
दक्षिण उत्तर है भाई ॥ १ ॥

अन्त :

घणु-घणु क्या कहुं, कह्यौं मैं कंचित कोई।
सब दीठो सब लहै, देश वठो नहीं जाई
जाणी जेती बात, तिती में प्रगट कहाणी।
झूठी कथ नहीं कथी, कहीं है साच कहाणी ॥
पिण रहिस हूँ इक बात रौ, तन सुख चाहै देह धर।
नारण घरी अरु क्या पहर, रहे नहीं सो सुघड़ नर ॥ १ ॥

१८ पोरबन्दर (सोरठ देश) वर्णन :

यह 'गिरनार जूनागढ़ वर्णन'—कार मनरूप कवि की रचना है। इस वर्णन के ३६ पद्यों में कवि ने पोरबन्दर का वर्णन इस प्रकार रखा है :

तिण देश पुरह विदर प्रसिद्ध,
वर्णवूं ताहि गुन सुन विबुद्ध।
कीरति ताहि की सुनहुं कान,
अलकापुरी जू ओपम जुं आन ॥ १ ॥

१९ बड़ोदरा गज़ल :

इसके रचयिता कविराज बहादुर तपागच्छीय रत्न विजय के शिष्य दीप विजय हैं। इसकी रचना तिथि सं० १८५२ मार्गशीर्ष शुक्ला १ शनिवार है जो रचना के अन्तिम कलश सवैया में इस प्रकार है :

पूरण किद्ध गज़ल अवल्ल,
अढार से बावन चित्त उल्लासें।
थावर वार मृगशिर तिथि
प्रतिपद पक्ष उजा सें॥
उदयो तले थाट उदय सूरि पादह लक्ष्मी
सूरि जिम भान आकाशें।
प्रमेय रत्न समान वरनन सेवक
दीप विजय इम भासें॥

२० बीकानेर गज़ल :

यति उदयचन्द्र विरचित इस गज़ल की रचना महाराज सुजाण के समय सं० १७६५ के चैत्र मास में हुई। कृति का अन्तिम झूलणा छंद इस प्रकार है :

संवत सतर पैंसठ रे मास,
चैत्र में गज़ल पूरी कीनी।
माता शारदा के सुपसाइ सुंरे,
मुझे खूब करण की मति दीनी॥
बीकानेर सहिर अजब है च्यारुं,
चक में ताकी प्रसिद्धि दीनी,
उदैचन्द आनन्द सुं युं कहै रे,
चतुर माणस के चितमाहि लीनी॥
चावो च्यारे चक में नवखण्ड मेरे,
प्रसिद्ध वधौ बीकानेर बाइ।
छत्रपति सुजाण सा जुग-जुग जीवो,
ताके राज्य में बाजते नोबत थाइ॥

मनसुं खूब बणाई के रे सु सुणाइ
के लोक सुमास पाई।
कवि चन्द आणंद सुं यूं कहै रे
गृ घूं घूं घूं घूं खूब गज़ल गाई॥

२१ बीकानेर गज़ल :

इसके कवि लालचन्द हैं। गज़ल में १६१ पद्य हैं। कवि ने नगर में होने वाले व्यापारादि का वर्णन इन शब्दों में किया है :

मोती किलंगी मालाक, वागे जरकसी वालाक।
लाखूं हुंडियां ल्यावे क,
जनसां माल ले आवे क॥ ६२॥

गज़ल की रचना समय सं० १८३८ ज्येष्ठ सुदि ७ रविवार है :

संमत अढार अड़तीस में, बीकानेर मझार।
जेठ सुकल सप्तम दिने, साचो सूरजवार॥ १६०॥
लालचन्द की लील सूं, कही खेत घर हेत।
पढे गुणे जे प्रेम भर, जे पामै लछ जेत॥ १६१॥

२२ बंगला (मुर्शिदाबाद) की गज़ल :

दोहा, गज़ल, रेखता आदि में यति निहाल ने इस गज़ल का निर्माण किया है :

गज़ल बंगाला देश की भाखित जती निहाल।
मूरख के मन नां बसे, पंडित होत खुश्याल॥

इनका रचना-समय सं० १७८२-१७९५ के मध्य है।[14] दो एक छन्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :

गज़ल :

अकल देश बंगाला कि,
नदियां बहुत है नाला कि।
संकड़ी गली है बहौं जोर,
जंगल खूब घिरे चहुं ओर॥

---

[14] राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, द्वितीय भाग : संपादक श्री अगरचन्द नाहटा, पृ० १५२।

नौसाख कामरू इक द्वार,
दरवाजा बिना नहीं पैसार।
जहँ होय बहती गंग,
दक्षिण ओर पर्वत तुंग ॥

रेखता :

यारो देस बंगला खूब है रे जिहां
बहत भागीरथी आय गंगा।
जिहां सिखर समेत पर नाथ पारस
प्रभु झाड़खंडी महादेव चंगा ॥
नगर पचेट में रघुनाथ का बड़ा
न्हाण है गंगा सागर सुसंगा।
देश उड़ीसा जगन्नाथ अरु वा कुंड
के न्हात सुख होत अंगा ॥

२३ भावनगर वर्णन गज़ल :

यह ३२ पद्यों की लघु रचना है जिसके रचयिता भक्ति विजय हैं और इसे उन्होंने सं० १८६६ कार्तिक पूर्णिमा को बनाया :

संवत् अठार छासठ साच बलि
तिहाँ मास कार्तिक भाख।
पूनम सकल को दिन देख,
वही है मङ्गल भाव विशेष ॥३१॥
तप गच्छ धणी तालावंत,
विजेजिनेन्द्र सूरि शोभंत।
सेवक भक्ति विजय कर सेव
पढ़ी है गज़ल पूण पंच देव ॥३२॥

२४ भावनगर वर्णन :

यह तपागच्छीय नेमविजय के शिष्य हेम की रचना है। इसकी रचना भी सं० १८६६ की कार्तिक पूर्णिमा को हुई।[१५] इसमें २५ छन्द हैं जिसमें दोहा, त्रोटक इत्यादि व्यवहृत हुए हैं। वर्णन का एक त्रोटक छन्द उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है :

---

[१५] संवत अठारह छासठे, पूनम कार्तिक पेख।
भावनगर का गुण भला, वरण्या कवि विशेष ॥

गहिरो अत देश गुज्जरयं,
निज धर्म महांशु नारी नरयं।
धणी ऋद्धि वृद्धि जिये घर में
धरे चित्त सुवत्त दया वर में ॥
पंडित नेम गुरु के पसाव,
मन शिष्य हेम उज्जल सुभाव।
सुनके शु रीझ है नर सयान,
वाह जु वाह वदइ महीवान ॥२४॥

२५ मंगलोर (सोरठ) वर्णन :

इसके कवि जोद्धण हैं। यह १४ छन्दों की लघु रचना है जिसमें कवि ने दोहा, पद्धरी छप्पय आदि छंदों में सौराष्ट्र के मंगलोर नगर का वर्णन किया है। वर्णन का एक पद्धरी छंद उदाहरणार्थ रखा जाता है :

मंगलोर सहर मोटे मंडाण,
ज्योत जगत मांहि कैलास जाण।
पहलो शु कोट अत ही प्रचण्ड,
नहीं इसो अवरन वहीं शु खण्ड ॥

कवि ने वर्णन के अन्तिम छप्पय में अपने गुरु एवं गच्छ इत्यादि की सूचना इस प्रकार दी है :

तरुण तेज गच्छ तपे, विजय जिनेन्द्र सूरीश्वर।
ज्ञानवंत गम्भीर, नमै सहू को नारी नर ॥
योग अष्ठ विध जाण, वाण अमृत सत वहियत।
संग सकल मिल सदा, निज उच्छव करते नित ॥
देश परदेश मांहे दंपत,
जीपत अष्ट कर्मह अरी।
कीरत सत गच्छपति तणी,
कव जोद्धण सेरह करी ॥१४॥

२६ मरोट गज़ल :

इसके रचयिता यति दुर्गादास हैं। इस गज़ल को उन्होंने दीपचन्द के आग्रह पर सं० १७६५ पौष कृष्णा ५ को बनाया :

सम्मत सतरे पैंसठे, पोह वदी पांचम्म ।
श्री गुर सरसती सानिधे, गज़ल करी गुण रम्य ॥१॥

आग्रह दीपचन्द उल्हास,
कहती जती यूँ दुरगादास ।
सुण है दीजियो स्याबास,
गज़ल खूब कीनी रास ॥

२७ मेड़ता वर्णन गज़ल :

यह मेड़ता वर्णन कवि मनरूप ने किया है । आप तपागच्छीय भक्ति विजय के शिष्य थे :

सब ही गच्छ में सिरताज,
राजत अटल तप गच्छ राज ।
भक्ति ही विजय गुण भारीक,
जाकुं खबर घर सारीक ॥४७॥

इस गज़ल में ४८ पद्य हैं और इसकी रचना स० १८६५ कार्त्तिक शुक्ला १५ को हुई :

संवत अठारह पैंसट साच,
वलि सुद मास कार्त्तिक वाच ।
पखही सुकल पुनम पेख,
दाखी गज़ल कविजन देख ॥४६॥

वर्णन बड़ा ही सरस बन पड़ा है :

सब ही में सहर जु, सिरह पुरह मेदनी पिछानो ।
इनका गुण अनपार, जाहि म रहस म जानो ॥
भाव भक्ति जिन भेद, जठै श्रावक सुखकारी ।
दयावंत दातार निपुण, धर्म में नर - नारी ॥

जिन धर्म मरम जाणण जिके,
हित कर मानव हेर तो ।
सुरपुरी मांहि इन्द्रपुर सरस,
पिण मरुधर मांहि मेड़तो ॥१॥

२८ मेदनीपुर महिमा छन्द :

मेदनीपुर मेड़ता का ही अन्य नाम है। इस रचना के रचयिता तपागच्छीय विजय जिनेन्द्र सूरि के शिष्य भक्ति विजय है। यह महिमा छन्द उन्होंने सं० १८६६ कार्तिक शुक्ला १५ को रचा :

संवत् अठार छासट्ठ वर्ष,
इद मास कार्त्तिक आन हर्ष।
पूनम शु प्रथम कुजवार पेख,
बड़ तप गच्छ दिपत विशेष ॥३७॥
बिजे जिनेन्द्र सूरि भरपुरि राज,
कर तेज धर्म के केई काज।
कवि कहत भक्त कर बिन्दु जोड़,
मेड़तो सदा मुरधरा मौड़ ॥३८॥

इसमें ३६ पद्य है जिनमें से निम्नांकित पद्धरि छंद अवलोकनार्थ दिया जाता है :

ट्रिग दिट्ठ मिट्ठ मरूधरा देश,
वलि शहर मेड़ता है विशेष।
बड़ कवि करत तिनके बखान,
मानव जूं सत यह सतमान ॥१॥

इसके छन्दों में राजस्थानी के शब्दालंकार 'वयण-सगाई' का भी सुन्दर निर्वाह किया गया है। दृष्टान्त-स्वरूप अधोलिखित छन्द के चारों चरणों में इसका निर्वाह द्रष्टव्य है :

नाभि नन्द नित नित नमुं, शान्त नेम सुखकार।
पारस श्री वर्द्धमान प्रति, धरूँ ध्यान चित्त धार॥

२६ लाहोर गज़ल :

इसके रचयिता नाहर गोत्रीय जैन श्रावक जटमल हैं जो मूलतः लाहोर निवासी थे।[१६] कवि ने गज़ल के ५६ पद्यों में शहर की बसावट, रावि नदी की शोभा, फलों की बहार आदि का सुन्दर वर्णन किया है।

---

[१६] लहानूर सुहावना देख्या होत आनन्द।
कवि जटमल वर्णन करि होत सुखकन्द ॥५६॥

देख्या सहिर जब लाहौर,
विसरे सहिर सगले और।
रावी नदी नीचे बहे,
नावा खूब डाली रहे ॥१॥

बोले बत्तकां, बग तीर,
निरमल वहै आछा नीर।
बस्ती सहिर है चौगान,
बारह कोश गिरदी जान ॥२॥

है जिहां जाइ गुल रंग,
लाल गुलाब बहुत सुरंग।
पिपल, राइवेल, चंबेल, मरुआ,
मोगरा, गुल, केल ॥५४॥

किसेइक नागणी के फूल,
कणेचर, कवल, मालति मूल।
शोभा नगर की अनेक,
जटमल कहै केती एक ॥५५॥

[क्रमशः

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

उस देश में राह के किनारे उगे वृक्षों के नीचे पथिक वधुएँ अलंकार धारण किए स्वच्छन्द रूप से बैठी थीं। देखकर लगा—इस राज्य में सुराज्य है, सुशासन है। प्रत्येक गाँव के गोकुलों में वृक्षों तले बैठे गोप बालक सानन्द ऋषभ चरित्र गा रहे थे। मानो भद्रशाल वन से लाकर रोपण किए हों ऐसे बहु संख्यक फलदायी सघन वृक्षों से समस्त ग्राम अलंकृत थे। वहाँ प्रत्येक घरों में दान की दीक्षा लिए गृहस्थ याचकों का अनुसन्धान करते रहते। भरत राजा द्वारा उत्पीड़ित उत्तर भरतार्द्ध से भागे हुए गरीब म्लेच्छगण यहाँ के अनेक ग्रामों में आ बसे थे। वह स्थान भरत क्षेत्र से अन्य-सा लग रहा था। वहाँ कोई भी राजा भरत की आज्ञा को जानता भी नहीं था, मानता भी नहीं था। इस प्रकार बहली देश से गुजरते समय सुवेग राह में मिलते लोगों के साथ जो कि बाहुबली के अतिरिक्त किसी अन्य राजा को नहीं जानते थे एवं जिन्हें कोई दुःख भी नहीं था बातचीत करता हुआ परिचय प्राप्त कर रहा था। पर्वत पर विचरण करने वाले दुर्मद और शिकारी पशु भी मानों पंगु हो गए हों ऐसे लग रहे थे। प्रजा के लिए अनुराग भरे वाक्यों एवं महान् समृद्धि के कारण वे बाहुबली की नीति को अद्वितीय सुखदायी समझने लगे थे। राजा भरत के लघु भ्राता बाहुबली के उत्कर्ष की बातें सुनते-सुनते आश्चर्य चकित सुवेग अपने स्वामी के संदेश को सोचता हुआ तक्षशिला के निकट पहुँचा। नगर के बहिर्भाग में निवास करने वाले लोग सामान्य पथिक की तरह उसे एक बार नजर उठाकर देख लेते। खेलकूद के मैदानों में धनुर्विद्या का अभ्यास करने वाले सैनिकों के हाथों के शब्दों से उसके रथ के घोड़े चमकने लगे। इधर-उधर नगर की समृद्धि को देखने में लगे हुए सारथी का मन स्वकार्य में नहीं रहा अतः उसका रथ अन्य पथ में जा अटका। बाहरी उद्यानों में सुवेग ने उत्तम हस्तियों को बँधा हुआ पाया। उसे लगा मानो समस्त चक्रवर्तियों के हस्ती रत्नों को वहाँ लाकर एकत्रित किया गया है। मानो ज्योतिष्क देवताओं के विमानों का परित्याग कर आए हों ऐसे उत्तम अश्वों से पूर्ण उत्तम अश्वशाला उसने देखी। राजा भरत के छोटे भाई के

आश्चर्यकारी ऐश्वर्य को देखकर मानो उसका सिर दुःखने लगा हो इस प्रकार माथा दबाते-दबाते दूत तक्षशिला में उपस्थित हुआ। मानो अहमिन्द्र ही हों ऐसे स्वच्छन्दवृत्ति का अवलम्बन लिये दुकानों पर बैठे व्यवसायीगणों को देखता हुआ वह राजद्वार के सम्मुख आ उपस्थित हुआ।

जिस प्रकार सूर्य तेज का आहरण कर निर्मित हुआ है वैसे ही चमकते हुए भाले हाथ में लिए पदातिक सैनिक वहाँ खड़े थे। स्थान-स्थान पर इक्षु के पत्रों-सी तीक्ष्ण बर्छी लिए जो रक्षक गण खड़े थे उन्हें देखकर लगा मानों वीरता रूप वृक्ष ही पल्लवित हो गया है। कहीं प्रस्तरों को चूर्ण कर देने वाले मुद्गर लिए सैनिक खड़े थे। वे एकदन्त हस्ती से लग रहे थे। कहीं नक्षत्रों पर्यन्त तीर निक्षेपकारी एवं शब्दभेदी तीर को भी निक्षेप करने में समर्थ धनुर्धर पीठ में तूणीर कसे और हाथों में काल-धनुष लिए खड़े थे। जैसे द्वारपाल ही हों ऐसे दरवाजे के दोनों ओर सूँड़ उठाए खड़े हुए हाथियों के कारण दूर से वह राजद्वार बड़ा भयंकर लग रहा था। उस नर-केशरी के सिंहद्वार को देखकर सुवेग के मन में विस्मय उत्पन्न हुआ। भीतर प्रवेश की आज्ञा पाने के लिए वह राजद्वार पर प्रतीक्षा करने लगा। राजमहल में प्रवेश का यही नियम है। उसके अनुरोध पर द्वारपाल भीतर जाकर बाहुबली से बोला कि आपके अग्रज का सुवेग नामक दूत बाहर खड़ा है। राजा ने उसे भीतर ले आने की आज्ञा दी। छड़ीदार ने बुद्धिमानों में श्रेष्ठ सुवेग नामक दूत को सूर्यमण्डल में बुध के प्रवेश-सा उस सभा में लाकर उपस्थित किया।

वहाँ विस्मित सुवेग ने सिंहासन पर बैठे तेज के देवता से बाहुबली को देखा। मानों आकाश से सूर्य ही उतर आया हो ऐसे तेजस्वी रत्नमय मुकुट-धारी राजा उनकी सेवा कर रहे थे। निज स्वामी के विश्वास रूप सर्वस्व वल्ली के सन्तान रूपी मण्डप के समान और परीक्षा द्वारा शुद्ध निर्णीत हो गए हों ऐसे प्रधानों का समूह उनके पास बैठा हुआ था। प्रदीप्त मुकुट सम्पन्न एवं जगत के लिए असह्य ऐसे नागकुमारों से राजकुमार उनके आस-पास उपस्थित थे। जिह्वा निकाले सर्पों-सी खुली तलवारें हाथ में लिए खड़े हजारों अंग-रक्षकों से वे मलयाचल-से भयंकर लग रहे थे। चमरीमृग जिस प्रकार हिमालय को चमर वीजन करते हैं उसी प्रकार अति सुन्दर वारांगनाएँ उन्हें चमर वींज रही थीं। विद्युत सह शरत् कालीन मेघों से पवित्र वस्त्र और छड़ीवाहक छड़ीदारों से वे सुशोभित हो रहे थे। सुवेग ने शब्दकारी सुवर्ण की दीर्घ शृंखलायुक्त हाथी की तरह ललाट से धरती को स्पर्श करते हुए

बाहुबली को प्रणाम किया। उसी क्षण महाराज के नेत्रों के संकेत से बताए हुए आसन को प्रतिहारी ने उसे दिखाया। सुवेग उस पर जाकर बैठ गया।

फिर कृपारूपी अमृत से धुली उज्ज्वल दृष्टि से सुवेग की ओर देखकर बाहुबली बोले—'हे सुवेग, आर्य भरत कुशल तो हैं न? पिता द्वारा लालित-पालित अयोध्या की समस्त प्रजा भी कुशल है न? कामादि षड्रिपुओं की भाँति भरत महाराज ने छः खण्डों को तो निर्विघ्नता के साथ जय कर लिया है न? साठ हजार वर्षों तक बड़े-बड़े युद्ध कर सेनापति आदि सभी सकुशल लौट आए हैं न? सिन्दूर रंजित कुम्भ-स्थलों द्वारा आकाश को सन्ध्या की तरह रक्तिम कर देने वाले महाराज का हस्तियूथ तो कुशलपूर्वक है न? हिमालय से लेकर समस्त पृथ्वी परिभ्रमणकारी समस्त उत्तम अश्व स्वस्थ तो हैं न? अखण्ड आज्ञाकारी व समस्त राजाओं द्वारा सेवित आर्य भरत के दिन सुखपूर्वक व्यतीत हो रहे हैं न?"

इस प्रकार प्रश्न करके वृषभात्मज बाहुबली जब मौन हुए तब निरुद्विग्न बने सुवेग करबद्ध होकर बोले—"समस्त पृथ्वी को सकुशल बनाने वाले राजा भरत की कुशलता तो स्वतःसिद्ध है। आपके अग्रज जिनकी रक्षा कर रहे हैं उनके सेनापति, अश्व, हस्ती, यहाँ तक कि समस्त अयोध्या नगरी में किसी का अनिष्ट करने की शक्ति विधाता तक में नहीं है। राजा भरत से अधिक तो क्या उनके समान भी कौन है जो भरत क्षेत्र व छः खण्डों को विजय करने में बाधक बनता? यद्यपि समस्त राजा उनकी आज्ञा का पालन करते हैं उनकी सेवा करते हैं फिर भी महाराज का मन प्रसन्न नहीं है। कारण दरिद्र होकर भी जो अपने कुटुम्ब द्वारा सेवित होते हैं वे ईश्वर हैं किन्तु जिसकी कुटुम्ब ही सेवा नहीं करता उसे ऐश्वर्य का सुख किस प्रकार होगा? साठ हजार वर्ष के पश्चात् प्रत्यावृत्त हुए आपके अग्रज अपने अनुजों के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। समस्त सम्बन्धी एवं उनके मित्रों ने आकर अभिषेक किया। उस समय इन्द्रादि समस्त देवता भी उनके पास आए किन्तु ऐसे समय भी अपने भाइयों को न पाकर वे सुखी नहीं हो सके। बारह वर्षों तक राज्याभिषेक चला फिर भी अपने भाइयों को आते न देखकर उन्होंने उनके पास दूत भेजे। कारण उत्कंठा अत्यन्त बलवान होती है। किन्तु न जाने क्या सोचकर वे राजा भरत के पास न आकर स्व पिता के पास चले गए और दीक्षा ग्रहण कर ली। अब वे मोह-ममता रहित हो गए हैं। उनके लिए न कोई अपना है न कोई पराया। अतः महाराज भरत का भ्रातृ-प्रेम उनके द्वारा पूर्ण नहीं हो सकता। यदि आपके हृदय में भ्रातृ-प्रेम हो तो आप वहाँ चलकर महाराज के हृदय को प्रसन्न करें।

बहुत दिनों पश्चात् आपके अग्रज प्रत्यावृत्त हुए हैं फिर भी आप बैठे हुए हैं? लगता है आपका हृदय वज्र से भी अधिक कठोर है। आप अग्रज की अवज्ञा कर रहे हैं इससे प्रतीत होता है आप निर्भीकों में भी निर्भीक हैं। नीतिवाक्य है—शूरवीरों के मन में भी गुरुजनों का भय रहना चाहिए। एक ओर विश्व विजयी दूसरी ओर गुरुजनों का विनयकारी इनमें प्रशंसायोग्य कौन है? यह विचार करने के लिए परिषद् बुलाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि गुरुजनों का विनयकारी ही प्रशंसायोग्य है। आप लोगों के इस अविनय को सहनशील महाराज सहन करेंगे किन्तु निन्दकों को निन्दा करने का अबाध अवसर मिलेगा। आपके अविनय को प्रकट करने वाले निन्दकों के वाणी रूपी तक्र के छींटे धीरे-धीरे महाराज के दूध से हृदय को विकृत कर देंगे। स्वामी के विषय में यदि अपना सामान्य-सा भी छिद्र हो तो उसका निरोध करना चाहिए। कारण सामान्य छिद्र भी जल बाँध को विनष्ट कर सकता है। आप यह मत सोचिए कि मैं इतने दिनों तक नहीं गया तो अब कैसे जाऊँ? आप चलिए, क्योंकि सुस्वामी त्रुटि को ग्रहण नहीं करते बल्कि उसकी उपेक्षा करते हैं। आकाश में सूर्योदय होते ही जैसे कुहासा नष्ट हो जाता है उसी प्रकार वहाँ जाते ही निन्दकों के मनोरथ नष्ट हो जायेंगे। पूर्णिमा का चन्द्र जिस प्रकार सूर्य से तेज ग्रहण करता है उसी भाँति उनसे मिलने पर आपके तेज की भी अभिवृद्धि होगी। स्वामी से आचरणकारी अनेक बलवान पुरुष अपना सेव्य-भाव परित्याग कर महाराज की सेवा कर रहे हैं। जिस प्रकार देवताओं के लिए इन्द्र सेव्य है उसी प्रकार कृपा करने में एवं दण्ड देने में समर्थ चक्रवर्ती समस्त राजाओं के सेव्य होते हैं। आप यदि केवल चक्रवर्ती के रूप में ही उनकी सेवा करेंगे तो भी आपका भ्रातृप्रेम ही प्रकाशित होगा। आप यदि यह सोचें कि ये चक्रवर्ती तो मेरे भाई हैं अतः वहाँ न जाऊँ तो वह भी अनुचित होगा कारण आदेश देने का मुख्य उत्स राजा ही होता है। वह कौटुम्बिकों से भी अपनी आज्ञा का पालन करवा सकता है। चुम्बक जिस प्रकार लोह को आकृष्ट करता है उसी प्रकार उनके उत्कृष्ट तेज से आकृष्ट होकर देव, दानव और मानव सभी भरतपति के निकट आते हैं। जबकि इन्द्र भी महाराज भरत को अपना अर्द्धासन प्रदान करते हैं तब उनके सुहृद होकर क्यों नहीं उनके निकट जाकर उन्हें अपने अनुकूल बना लेते हैं? यदि आप वीरत्व के अभिमान में महाराज का अपमान करते हैं तब तो सैन्य सहित आप उनके पराक्रम रूपी समुद्र में एक मुष्ठि घुन लगे धान्य के आटे की तरह विलीन हो जायेंगे। चलमान पर्वत-से उनके ऐरावत तुल्य चौरासी लाख

हस्तियों का वेग सहन करने में कौन समर्थ है ? उनके प्रलयंकालीन समुद्र के कल्लोल से समस्त पृथ्वी को प्लावित करने में समर्थ चौरासी लाख अश्व और चौरासी लाख रथ को निवारण करने में कौन समर्थ हैं ? छियानवें करोड़ उनके पदातिक सिंह की भाँति किसके हृदय को भयभीत करने में समर्थ नहीं है ? उनके एकमात्र सेनापति सुषेण ही यदि हाथ में दण्ड लिए आएँ तो देव और दानव कोई भी उनके सम्मुखीन नहीं हो सकता। सूर्य के सम्मुख जिस प्रकार अन्धकार का कोई महत्व नहीं उसी प्रकार चक्रधारी भरत चक्रवर्ती के सम्मुख तीन लोक नगण्य है। इसलिए हे बाहुबली, तेज और उम्र दोनों में आप से बड़े महाराज भरत राज्य और जीवन के इच्छुक आपके लिए सेव्य हैं।"

[क्रमशः

मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास

लेखक—श्रीचन्द चोरड़िया

प्रकाशक—जैन दर्शन समिति, कलकत्ता, पृष्ठ ३६०

मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास—जैन तत्त्व दर्शन का एक बहुचर्चित पहलू है। आध्यात्मिक विकास या धर्म किसी व्यक्ति या मत विशेष की सीमा तक ही सीमित रहे, यह कैसे अभीष्ट हो सकता है। आत्म विकास की संभावना में एकाधिकार की कोई संगति नहीं होती फिर भी कोई मत या विचार जब वाद का रूप ग्रहण कर लेता है तो अनेक प्रकार के तर्क उपस्थित हो जाते हैं। मिथ्यात्वी के आध्यात्मिक विकास को नकारने का अर्थ होता—किसी की सम्यक्त्व प्राप्ति का निषेध। तथ्य यह है कि आत्म प्रदेशों की उज्ज्वलता के बिना सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता और आध्यात्मिक विकास के बिना आत्म प्रदेशों की उज्ज्वलता नहीं होती। आगमों में असोच्चा केवली का प्रसंग आता है। कोई मिथ्यात्वी धर्म को सुने बिना ही निरवद्य क्रिया करते हुए सम्यक्त्व और चारित्र को प्राप्त कर केवली बन जाता है, उसे असोच्चा केवली कहते हैं। यदि मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास नहीं होगा तो असोच्चा केवली का प्रसंग ही मिथ्या हो जाएगा। विपाक सूत्र तथा ज्ञाता में भी अनेक ऐसे प्रसंग हैं जहां मिथ्यात्व अवस्था में सुपात्रदान आदि के द्वारा परित संसार करके मनुष्य का आयु बांधा गया है। तामली तापस का प्रसंग तो इस तथ्य को और अधिक पुष्ट कर देता है।

आत्म उज्ज्वलता की तारतम्य के आधार पर गुणस्थानों का निरूपण किया गया। गुणस्थान का अर्थ है—आत्मा की शुद्धि। मिथ्यात्वी को पहले गुण स्थान में रखा गया है। समवायांग में कहा गया है—कम्मविसोहिमग्गणं-पडुच्च चउद्दस जीवट्ठाणा पण्णत्ता—कर्म विशुद्धि के तारतम्य की अपेक्षा से चौदह जीवस्थान (गुणस्थान) होते हैं। मिथ्यात्वी भी जब प्रथम गुण स्थान का अधिकारी है तब उसका आध्यात्मिक विकास तो स्वतःसिद्ध है। उसे नकारने या अस्वीकारने का कोई कारण नहीं रह जाता। इसी प्रकार नन्दी सूत्र में भी कहा गया है—सव्व जीवाणं पियणं अक्खरस्स अणंतमो भागो निच्चुग्घाडिओजइ पुण सो वि आवरेज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पावेज्जा—ऐसा एक भी जीव नहीं है जिसमें सूक्ष्मतम आंशिक उज्ज्वलता नहीं होती। सूक्ष्मतम आंशिक उज्ज्वलता के अभाव में जीव अपने मूल स्वभाव को छोड़कर अजीव

बन जाता। जीव कभी अजीव नहीं होता इसका एकमात्र कारण है उसकी सूक्ष्मतम आंशिक उज्ज्वलता।

आगमों में अनेक स्थानों पर ऐसे प्रसंग विकीर्ण हैं जो मिथ्यात्वी के आध्यात्मिक विकास की पुष्टि करते हैं। फिर भी एक विचारधारा इसे स्वीकार नहीं करती। लेखक श्री श्रीचन्द चोरड़िया ने आगम तथा आगमेतर ग्रन्थों का मन्थन कर पक्ष-विपक्ष के उन समस्त प्रमाणों को एक साथ उपस्थित कर दिया है ताकि जैन तत्व दर्शन के अध्येताओं के लिए इस सम्बन्ध में निर्णायक अध्ययन की सुविधा हो सके। सामग्री के प्रस्तुतीकरण में लेखक का साम्प्रदायिक अनाग्रह एवं वैचारिक उदारता परिलक्षित होती है।

लेखक का अध्ययन और अध्यवसाय जितना प्रशस्त है, उतना ही उसका सम्पादन भी प्रशस्त होता तो ग्रन्थ की महत्ता और अधिक बढ़ जाती। सम्पादन सम्बन्धी परिमार्जन पर भविष्य में विशेष ध्यान दिया जाए तो जैन वाङ्मय के क्षेत्र में लेखक से भविष्य में और अधिक अपेक्षाएं की जा सकती है। कुल मिलाकर लेखक ने एक विमर्शनीय विषय को कोश के रूप में प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ भी पूर्व प्रकाशित लेश्या कोश, क्रिया कोश आदि की कोटि का है। लेखक का परिश्रम और पुरुषार्थ भविष्य में भी इस प्रकार के अन्य विवेचनीय विषयों पर जिज्ञासु और अनुसन्धित्सुओं के लिए कुछ करे, यही काम्य है।

—मुनि गुलाब चन्द्र 'निर्मोही'

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अनेकान्त || जुलाई-सितम्बर १९८३

इस अंक में है 'सम्यक्त्व-कौमुदी सम्बन्धी शोध खोज' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'नव वर्ष दिवस' (रमाकान्त जैन), 'पर्युषण कल्प' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'डिग्गी (राजस्थान) के दि० जैन मन्दिर में उपलब्ध हिन्दी का प्रथम पद्म पुराण' (डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल), 'बिहार में जैन धर्म : अतीत एवं वर्तमान' (डा० राजाराम जैन), 'निमित्ताधीन दृष्टि' (बाबूलाल जैन), '[illegible] की लिपि प्रशस्ति' (कुन्दनलाल जैन), 'आचार्य कुन्दकुन्द की जैन दर्शन को देन' (डा० लाल चन्द जैन) ।

कथालोक || अक्टूबर १९८३

इस अंक में है जैन कथा 'नागिला' (नैनमल सुराणा) ।

कुशल निर्देश || अक्टूबर १९८३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघन जी महाराज का पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'भगवान के नेत्र' (राजकुमारी बेगानी), 'श्री अजित शान्ति स्तोत्र पद्यानुवाद' (भँवरलाल नाहटा) ।

जिनवाणी || अक्टूबर १९८३

आचार्य श्री हस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'विवेक और परीक्षा' (श्री हीरामुनि), 'ज्ञान वही जो आत्मलक्षी बनावे' (मंजुला बम्ब), 'जीवदया सम्बन्धी कुछ प्राचीन उल्लेख' (राम वल्लभ सोमानी), 'धर्म का स्वरूप' (सरदार चन्द भण्डारी), 'ज्ञान प्राप्ति से मोक्ष प्राप्ति का क्रम एवं विवेचन' (चांदमल कर्णावट) ।

जैन जगत् || अक्टूबर १९८३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'कर्मफल' (एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्द जी), 'जैन दर्शन में मुक्ति तत्व' (निर्मला गुप्ता), 'नारी जगत का गौरव' (मंजुला बेन अ० बोटादरा) ।

जैन जर्नल || अक्टूबर १९८३

इस अंक में है 'A Nonpareil Ambika Image from Patian-Dai' (Maruti Nandan Prasad Tiwary), 'Kautilya : A Follower of Jainism, (Binod Kumar Tiwary), 'Yatis and Vratyas' (J. C. Sikdar), 'A Note on Vasunandi and His Date' (Hampa Nagarajayya), 'Jaina Sculptures from Anai-Jambad' (Pratip Kumar Mitra) !

तीर्थंकर || अक्टूबर १९८३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'आर्जव अर्थात् सरलता, समता, सादगी' (एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्द), 'चातुर्मास : संस्कार-सिंचन और संवर्द्धन के श्रेष्ठ क्षण' (महासुखलाल छोटाभाई देसाई), 'प्रमाण और नय' (पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री), 'संयम साधना का पर्व : चातुर्मास' (कन्हैयालाल सरावगी), 'विपश्यना : वर्तमान में निःकांक्ष पड़ाव' (मुनि अमरेन्द्र विजय), 'अर्द्धकथानक' (बनारसी दास अनु० राजकुमारी बेगानी), 'चातुर्मास : जरूरी क्या है ? (पत्र में लेख)' (गणेश ललवानी) ।

Vol. VII No. 7 : Titthayara : November 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700 001